



2026:AHC-LKO: 13362

प्रकाशनार्थ स्वीकृत

इलाहाबाद उच्च न्यायालय

लखनऊ

मामला अंतर्गत अनुच्छेद 227 संख्या - 252 वर्ष 2025

लखनऊ विकास प्राधिकरण, द्वारा इसके सचिव लखनऊ याचिकाकर्ता(गण)

बनाम

प्रेम चंद्र प्रत्यर्थी(गण)

याचिकाकर्ता(गण) के अधिवक्ता : भानु बाजपेयी

प्रत्यर्थी(गण) के अधिवक्ता : अमित जायसवाल, अंकित वर्मा, आशीष कुमार सिंह

न्यायालय संख्या-17

माननीय न्यायमूर्ति सुभाष विद्यार्थी

1. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता श्री भानु बाजपेयी की सहायता से वरिष्ठ अधिवक्ता श्री मुकुंद तिवारी, प्रत्यर्थी की ओर से विद्वान अधिवक्ता श्री अमित जायसवाल को सुना और अभिलेख का अवलोकन किया।
2. भारत के संविधान के अनुच्छेद 227 के अंतर्गत प्रस्तुत वर्तमान याचिका के माध्यम से याचिकाकर्ता ने भूमि अर्जन, पुनर्वासन एवं पुनर्व्यवस्थापन प्राधिकरण, लखनऊ (जिसे आगे "लारा" कहा जाएगा) द्वारा निष्पादन वाद संख्या 42/2024, प्रेम चन्द्र बनाम राज्य एवं अन्य में पारित निम्नलिखित तीन आदेशों की वैधता को चुनौती दी है, अर्थात्— (i) दिनांक 25.09.2025 का आदेश, जिसके द्वारा विपक्षी द्वारा प्रस्तुत गणना-चार्ट के विरुद्ध याचिकाकर्ता की आपत्तियाँ निरस्त कर दी गईं; (ii) दिनांक 19.12.2025 का आदेश, जिसके द्वारा याचिकाकर्ता का सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 47 के अंतर्गत प्रस्तुत प्रार्थना पत्र निरस्त कर दिया गया; तथा (iii) दिनांक 23.12.2025 का आदेश, जिसके द्वारा डिक्रीधारक द्वारा सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश

अस्वीकरण: अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।



XXI, नियम 37 के अंतर्गत प्रस्तुत प्रार्थना पत्र के विरुद्ध याचिकाकर्ता की आपतियाँ निरस्त कर दी गईं।

3. प्रत्यर्थी के विद्वान अधिवक्ता श्री अमित जायसवाल ने प्रारंभिक आपति जताई है कि याचिकाकर्ता को सीपीसी की धारा 115 के तहत पुनरीक्षण दायर करके इन आदेशों को चुनौती देने का उपाय मिल गया है और इसलिए, अनुच्छेद 227 के तहत याचिका सुनवाई योग्य नहीं है। उक्त तर्क के समर्थन में उन्होंने **सी.जी. थम्पी बनाम ज्योतिस**, 2022 एससीसी ऑनलाइन केर 704 में केरल उच्च न्यायालय के एकल न्यायाधीश द्वारा दिए गए निर्णय, **तपन चंद्र देब बर्मा बनाम दुलाल चंद्र देब बर्मा**: 1979 एससीसी ऑनलाइन जीयू 17, **साधना लोध बनाम नेशनल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड**: (2003) 3 एससीसी 524 के निर्णयों पर भरोसा किया है।

4. **साधना लोध बनाम नेशनल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड**: (2003) 3 एससीसी 524 में, यह अभिनिर्धारित किया गया था कि: -

7. संविधान के अनुच्छेद 227 के तहत उच्च न्यायालयों को प्रदत्त पर्यवेक्षी क्षेत्राधिकार केवल यह देखने तक ही सीमित है कि क्या एक अवर न्यायालय या न्यायाधिकरण अपने मापदंडों के भीतर आगे बढ़ा है और अभिलेख पर स्पष्ट त्रुटि को ठीक करने के लिए नहीं, कानून की त्रुटि से बहुत कम है। संविधान के अनुच्छेद 227 के तहत पर्यवेक्षी शक्ति का प्रयोग करते हुए, उच्च न्यायालय अपीलीय न्यायालय या न्यायाधिकरण के रूप में कार्य नहीं करता है। संविधान के अनुच्छेद 227 के तहत दायर याचिका पर उच्च न्यायालय को उन साक्ष्यों की पुनर्विलोकन या पुनर्मूल्यांकन करने की भी अनुमति नहीं है, जिन पर अवर न्यायालय या न्यायाधिकरण आदेश पारित करने या निर्णय में विधि की त्रुटियों को ठीक करने का दावा करता है।

8. उपरोक्त कारणों से, हमारा विचार है कि चूंकि बीमाकर्ता के पास उच्च न्यायालय के समक्ष अपील दायर करके एक उपाय है, इसलिए उच्च न्यायालय को संविधान के अनुच्छेद 226/227 के तहत याचिका पर विचार नहीं करना चाहिए था और इस कारण से, चुनौती के तहत निर्णय और आदेश को रद्द किया जाना चाहिए। तदनुसार, हम अपील के तहत निर्णय और आदेश को रद्द करते हैं। अपील की अनुमति दी जाती है। वाद व्यय के सम्बन्ध में कोई आदेश नहीं है। हालांकि, बीमाकर्ता के लिए अपील दायर करने के लिए खुला होगा यदि यह कानून के तहत अनुमेय है।”

अस्वीकरण: अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।



5. सी.जी. थम्पी बनाम ज्योति: 2022 एससीसी ऑनलाइन केर 704 के दौरान यह अभिनिर्धारित किया गया कि: -

“... जहां कहीं भी कार्यवाही सिविल प्रक्रिया संहिता के तहत होती है और फोरम सिविल न्यायालय होता है, सीपीसी के तहत एक उपाय की उपलब्धता, उच्च न्यायालय को न केवल स्व-लगाए गए प्रतिबंध के उपाय के रूप में, बल्कि अनुशासन और विवेक के प्रकरण के रूप में, संविधान के तहत अधीक्षण की अपनी शक्ति का प्रयोग करने से रोकती है। इसलिए उच्च न्यायालय को भारत के संविधान के अनुच्छेद 227 के तहत संशोधन पर विचार नहीं करना चाहिए था, ऐसे प्रकरण में जहां सिविल प्रक्रिया संहिता के तहत अपील का एक विशिष्ट उपाय प्रदान किया गया है। इसके अलावा, सिविल प्रक्रिया संहिता के तहत इस तरह के उपाय की उपलब्धता को भारत के संविधान के अनुच्छेद 227 के तहत उपचार के लिए कुल सीमा के करीब माना जाना चाहिए।”

6. तपन चंद्र देब बर्मा बनाम दुलाल चंद्र देब बर्मा: 1979 एससीसी ऑनलाइन जीओ 17 : एआईआर 1980 जीओ 3 में, यह अभिनिर्धारित किया गया था कि 01.02.1977 को या उसके बाद सीपीसी की धारा 47 के तहत किए गए निर्धारण डिक्री नहीं हैं और इसलिए अपील योग्य नहीं हैं, गुवाहाटी उच्च न्यायालय ने अपीलीय न्यायालय को उच्च न्यायालय के समक्ष उचित प्रस्तुति के लिए अपील के ज्ञापन को संशोधन के रूप में वापस करने का आदेश दिया।

7. इसके विपरीत याचिकाकर्ता की ओर से पेश विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता श्री मुकुंद तिवारी ने भूमि अधिग्रहण अधिनियम, 1894 की धारा 53 में निहित प्रावधान की ओर न्यायालय का ध्यान आकर्षित किया है, जो इस प्रकार है: -

“53. न्यायालय के समक्ष कार्यवाही पर लागू होने के लिए सिविल प्रक्रिया संहिता-
जहां तक वे इस अधिनियम में निहित किसी भी चीज़ से असंगत हो सकते हैं, सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 का प्रावधान, इस अधिनियम के तहत न्यायालय के समक्ष सभी कार्यवाहियों पर लागू होगा।

8. भूमि अधिग्रहण अधिनियम, 1894 की धारा 3 (डी) में दी गई न्यायालय की परिभाषा इस प्रकार है: -

“(घ) अभिव्यक्ति न्यायालय का तात्पर्य मूल क्षेत्राधिकार का एक प्रधान सिविल न्यायालय से है, जब तक कि समुचित सरकार ने इस अधिनियम के अधीन न्यायालय के अस्वीकरण: अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।



कृत्यों का निष्पादन करने के लिए किसी विनिर्दिष्ट स्थानीय सीमाओं के भीतर एक विशेष न्यायिक अधिकारी को नियुक्त न किया हो (जैसा कि उसे इसके द्वारा करने का अधिकार प्राप्त है) न किया हो।”

9. राज्य सरकार ने दिनांक 04.08.2022 को एक अधिसूचना जारी की है, जिसमें भूमि अधिग्रहण और पुनर्वास और पुनर्स्थापन प्राधिकरण के पीठासीन अधिकारियों को न्यायालयों के कर्तव्यों का पालन करने के लिए अधिकृत किया गया है और यह घोषणा की गई है कि वे विशेष न्यायिक अधिकारियों के रूप में काम करेंगे। इसके बाद दिनांक 21.02.2024 के सरकारी आदेश में स्पष्ट किया गया है कि भूमि अधिग्रहण और पुनर्वास और पुनर्स्थापन प्राधिकरण के पीठासीन अधिकारी भी भूमि अधिग्रहण अधिनियम, 1894 के तहत निष्पादन के प्रकरण सहित सभी लंबित प्रकरण पर निर्णय लेने के लिए अधिकृत हैं।

10. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया है कि भूमि अधिग्रहण अधिनियम, 1894 के तहत प्रकरण का निर्णय लेते समय, लारा भूमि अधिग्रहण अधिनियम के तहत एक न्यायालय के रूप में कार्य करता है, इसलिए सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 का प्रावधान, एलएआरए के समक्ष सभी कार्यवाही पर लागू होगा। तथापि, **आन्ध्र प्रदेश राज्य बनाम वी. शर्मा राव: (2007) 2 एससीसी 159** के प्रकरण में सर्वोच्च ने निम्नवत् अभिधारित किया है :-

“12. ... सिविल प्रक्रिया संहिता (सीपीसी) के प्रावधानों के समक्ष लंबित कार्यवाही के संबंध में लागू होने के बावजूद, इसका मूल हिस्सा लागू नहीं होता है। सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 96 के तहत अपील का अधिकार प्रदान किया गया है। इस तरह की अपीलें सिविल प्रक्रिया संहिता के तहत निर्धारित मंचों या कानून द्वारा शासित न्यायालयों के समक्ष दायर की जानी हैं। तथापि, भूमि अर्जन न्यायाधीश के निर्णय से कोई अपील सिविल क्षेत्राधिकार के प्रधान न्यायालय या दूसरे शब्दों में, जिले के जिला न्यायाधीश के समक्ष दायर नहीं की जा सकती है, क्योंकि ऐसी अपीलें केवल उच्च न्यायालय के समक्ष होती हैं। जिला न्यायाधीश के समक्ष संदर्भ न्यायालय द्वारा पारित आदेश के विरुद्ध पूर्व दृष्ट्या दायर कोई अपील विचारणीय नहीं है।”

11. श्री. तिवारी ने कहा कि सीपीसी की धारा 115 के तहत प्रावधान भी सीपीसी की धारा 96 के तहत अपील के मूल प्रावधान की तरह एक महत्वपूर्ण प्रावधान है। इसलिए, **आंध्र प्रदेश बनाम वी.**



सरमा राव (पूर्वोक्त) राज्य में निर्धारित कानून को ध्यान में रखते हुए, धारा 115 सीपीसी के तहत संशोधन एलएआरए द्वारा पारित आदेश के खिलाफ नहीं होगा।

12. प्रत्यर्थी के विद्वान अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया है कि **ए.पी. बनाम वी सरमा राव (पूर्वोक्त)** राज्य का निर्णय उस प्रकरण के अजीबोगरीब तथ्यों को ध्यान में रखते हुए किया गया था और यह सार्वभौमिक आवेदन के एक सामान्य सिद्धांत को निर्धारित नहीं करता है कि एलएआरए द्वारा पारित आदेश के खिलाफ कोई संशोधन नहीं होगा। उन्होंने **भावनगर विश्वविद्यालय बनाम पालिताना शुगर मिल (प्रा) लिमिटेड: (2003) 2 एससीसी 111** के प्रकरण में निर्णय पर भरोसा किया है, जिसमें माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने माना कि एक निर्णय एक प्राधिकरण है जिसके लिए यह तय किया जाता है और न कि तार्किक रूप से उससे क्या निष्कर्ष निकाला जा सकता है।

13. मैं प्रत्यर्थी के विद्वान अधिवक्ता की इस दलील से सहमत हूँ कि **आंध्र प्रदेश बनाम वी. सरमा राव (पूर्वोक्त)** यह निर्धारित नहीं करता है कि द्वारा पारित एक आदेश सीपीसी की धारा 115 के तहत पुनरीक्षण क्षेत्राधिकार के लिए उत्तरदायी नहीं है। **शिव शक्ति कॉप हाउसिंग सोसाइटी बनाम स्वराज डेवलपर्स: (2003) 6 एससीसी 659** में, यह अभिनिर्धारित किया गया था कि यह कानून में काफी अच्छी तरह से स्थापित स्थिति है कि अपील का अधिकार एक वास्तविक अधिकार है। लेकिन धारा 115 के तहत आवेदन करने में ऐसा कोई ठोस अधिकार नहीं है। माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने स्पष्ट किया कि धारा 115 अनिवार्य रूप से उच्च न्यायालय के लिए अधीनस्थ न्यायालयों की निगरानी करने की शक्ति का एक स्रोत है। यह किसी भी तरह से अधीनस्थ न्यायालय के किसी भी आदेश से व्यथित वादी को राहत के लिए उच्च न्यायालय का दरवाजा खटखटाने का अधिकार प्रदान नहीं करता है। धारा 115 के तहत संशोधन करने की गुंजाइश एक मूल अधिकार से जुड़ी नहीं है।

14. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने आगे प्रस्तुत किया है कि यद्यपि धारा 47 सीपीसी के तहत आवेदन को खारिज करने का आदेश इस न्यायालय के पुनरीक्षण क्षेत्राधिकार के लिए उत्तरदायी हो सकता है, अन्य दो आदेश निर्णीत किए गए प्रकरण की श्रेणी में नहीं आते हैं और इसलिए, वे इस न्यायालय के पुनरीक्षण क्षेत्राधिकार के लिए उत्तरदायी नहीं हैं। उन्होंने प्रस्तुत किया है कि जब एक ही प्रकार के पक्षों के बीच एक ही कार्यवाही में पारित तीन आदेशों को इस न्यायालय के समक्ष चुनौती देने की आवश्यकता होती है, तो धारा 115 सीपीसी के तहत एक संशोधन दायर



करके एक आदेश को चुनौती दी जाती है, जबकि अन्य दो आदेशों की वैधता को चुनौती देने के लिए भारत के संविधान के अनुच्छेद 227 के तहत याचिका दायर की जाती है, इससे केवल कार्यवाहियों की बहुलता होगी। इसके अलावा, भारत के संविधान के अनुच्छेद 227 के तहत इस न्यायालय को प्रदत्त अधीक्षण की शक्ति सीपीसी की धारा 115 के तहत इस न्यायालय की पुनरीक्षण शक्ति को कम नहीं करती है।

15. श्री. मुकुंद तिवारी वरिष्ठ अधिवक्ता ने शालिनी श्याम शेटी बनाम राजेंद्र शंकर पाटिल: (2010) 8 एससीसी 329 के प्रकरण में निर्णय पर भरोसा किया है, जिसमें माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने भारत के संविधान के अनुच्छेद 227 के तहत हस्तक्षेप के दायरे के बिंदु पर विभिन्न उदाहरणों पर विचार किया और निम्नलिखित सिद्धांतों को संक्षेप में प्रस्तुत किया: -

“48. अनुच्छेद 226 के तहत क्षेत्राधिकार का प्रयोग आम तौर पर किया जाता है जहां एक पक्ष प्रभावित होता है, लेकिन अनुच्छेद 227 के तहत शक्ति का प्रयोग उच्च न्यायालय द्वारा न्याय के संरक्षक के रूप में स्वतः संज्ञान से किया जा सकता है। वास्तव में, अनुच्छेद 226 के तहत शक्ति का प्रयोग व्यक्तियों या नागरिकों के पक्ष में उनके मौलिक अधिकारों या अन्य वैधानिक अधिकारों की पुष्टि के लिए किया जाता है। अनुच्छेद 227 के तहत क्षेत्राधिकार का प्रयोग उच्च न्यायालय द्वारा राज्य में सर्वोच्च न्यायिक प्राधिकरण के रूप में अपनी स्थिति की पुष्टि के लिए किया जाता है। कुछ प्रकरण में जहां मौलिक अधिकार का उल्लंघन होता है, संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत राहत का दावा किया जा सकता है। लेकिन ऐसे प्रकरण में जहां उच्च न्यायालय अनुच्छेद 227 के तहत अपने क्षेत्राधिकार का प्रयोग करता है, इस तरह की कवायद पूरी तरह से विवेकाधीन है और कोई भी व्यक्ति इसे अधिकार के प्रकरण के रूप में दावा नहीं कर सकता है। अनुच्छेद 226 के तहत पारित एकल न्यायाधीश के आदेश से, एक पत्र पेटेंट अपील या एक अंतर-न्यायालय अपील सुनवाई योग्य है। लेकिन अनुच्छेद 227 के तहत शक्ति का प्रयोग करते हुए उच्च न्यायालय के एकल न्यायाधीश द्वारा पारित आदेश से ऐसी कोई अपील सुनवाई योग्य नहीं है। लगभग सभी उच्च न्यायालयों में, अनुच्छेद 226 के तहत क्षेत्राधिकार के प्रयोग को विनियमित करने के लिए नियम बनाए गए हैं। ऐसा कोई नियम अनुच्छेद 227 के तहत उच्च न्यायालय की शक्ति का प्रयोग करने के लिए तैयार नहीं किया गया है, संभवतः इस तरह के अभ्यास को पूरी तरह से उच्च न्यायालय के विवेक के क्षेत्राधिकार में रखने के लिए।”

अस्वीकरण: अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।



49. इस न्यायालय के पूर्वोक्त निर्णयों के विश्लेषण पर, संविधान के अनुच्छेद 227 के तहत उच्च न्यायालय के क्षेत्राधिकार के प्रयोग पर निम्नलिखित सिद्धांत तैयार किए जा सकते हैं:

(ए) संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत एक याचिका अनुच्छेद 227 के तहत एक याचिका से अलग है। इन दो अनुच्छेदों के तहत उच्च न्यायालय द्वारा शक्ति के प्रयोग का तरीका भी अलग-अलग है।

(ख) किसी भी स्थिति में, अनुच्छेद 227 के तहत याचिका को रिट याचिका नहीं कहा जा सकता है। उच्च न्यायालयों को रिट क्षेत्राधिकार प्रदान करने का इतिहास अनुच्छेद 227 के तहत उच्च न्यायालयों में अधीक्षण की शक्ति प्रदान करने के इतिहास से काफी अलग है और ऊपर चर्चा की गई है।

(ग) उच्च न्यायालय संविधान के अनुच्छेद 227 के अधीन अधीक्षण की अपनी शक्ति का प्रयोग करते हुए अधिकरणों अथवा उससे कमतर न्यायालयों के आदेशों में हस्तक्षेप नहीं कर सकते हैं। न ही यह इस शक्ति का प्रयोग करते हुए, न्यायालय या इसके अधीनस्थ न्यायाधिकरण के आदेशों पर अपील की न्यायालय के रूप में कार्य कर सकता है। ऐसे प्रकरण में जहां निवारण का एक वैकल्पिक वैधानिक तरीका प्रदान किया गया है, वह उच्च न्यायालय द्वारा इस शक्ति के प्रयोग पर एक प्रतिबंध के रूप में भी काम करेगा।

(घ) उच्च न्यायालयों द्वारा अधीक्षण की अपनी शक्ति का प्रयोग करते हुए हस्तक्षेप के मानदंड इस न्यायालय द्वारा बार-बार निर्धारित किए गए हैं। इस संबंध में, उच्च न्यायालय को वरयाम सिंह [एआईआर 1954 एससी 215] में इस न्यायालय की संविधान पीठ द्वारा निर्धारित सिद्धांतों द्वारा निर्देशित किया जाना चाहिए और वरयाम सिंह [एआईआर 1954 एससी 215] के सिद्धांतों का बाद की संविधान पीठों और इस न्यायालय के विभिन्न अन्य निर्णयों द्वारा बार-बार पालन किया गया है।

(ङ) वरयाम सिंह [एआईआर 1954 एससी 215] में अनुवर्ती प्रकरण में अनुसरण किए गए अनुपात के अनुसार, उच्च न्यायालय अधीक्षण के अपने क्षेत्राधिकार का प्रयोग करते हुए केवल अधीनस्थ अधिकरणों और न्यायालयों को उनके अधिकार की सीमाओं के भीतर रखने के लिए हस्तक्षेप कर सकता है .



(च) यह सुनिश्चित करने के लिए कि ऐसे अधिकरणों और न्यायालयों द्वारा कानून का पालन किया जाता है, जो उनके पास निहित है, क्षेत्राधिकार का प्रयोग करते हुए और उनमें निहित क्षेत्राधिकार का प्रयोग करने से इनकार नहीं करते हैं।

(छ) (ड) और (च) में बताई गई स्थितियों के अलावा, उच्च न्यायालय अधीक्षण की अपनी शक्ति के प्रयोग में हस्तक्षेप कर सकता है जब उसके अधीनस्थ न्यायाधिकरणों और न्यायालयों के आदेशों में कोई स्पष्ट विकृति हो या जहां न्याय की घोर और स्पष्ट विफलता हुई हो या प्राकृतिक न्याय के मूल सिद्धांतों का उल्लंघन किया गया हो।

(ज) अधीक्षण की अपनी शक्ति का प्रयोग करते हुए उच्च न्यायालय कानून या तथ्य की त्रुटियों को ठीक करने के लिए हस्तक्षेप नहीं कर सकता है या केवल इसलिए कि इसके अधीनस्थ न्यायाधिकरणों या न्यायालयों द्वारा लिए गए दृष्टिकोण के अलावा कोई अन्य दृष्टिकोण एक संभावित दृष्टिकोण है। दूसरे शब्दों में, क्षेत्राधिकार का प्रयोग बहुत कम किया जाना चाहिए।

(झ) अनुच्छेद 227 के तहत उच्च न्यायालय की अधीक्षण की शक्ति को किसी भी संविधि द्वारा कम नहीं किया जा सकता है। इसे इस न्यायालय की संविधान पीठ द्वारा संविधान के मूल ढांचे का एक हिस्सा घोषित किया गया है। चंद्र कुमार बनाम भारत संघ [(1997) 3 एससीसी 261: 1997 एससीसी (एल एंड एस) 577] और इसलिए एक संवैधानिक संशोधन द्वारा निरस्तीकरण भी बहुत संदिग्ध है।

(ञ) यह सच हो सकता है कि सिविल प्रक्रिया संहिता (संशोधन) अधिनियम, 1999 द्वारा सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 115 जैसे किसी संवैधानिक उपबंध में संविधिक संशोधन अनुच्छेद 227 के अधीन उच्च न्यायालय की शक्ति के दायरे को कम नहीं करता है और न ही कर सकता है। साथ ही, यह याद रखना चाहिए कि इस तरह का वैधानिक संशोधन अनुच्छेद 227 के तहत उच्च न्यायालय के अधीक्षण के क्षेत्राधिकार का विस्तार नहीं करता है।

(ट) यह शक्ति विवेकाधीन है और इसका प्रयोग न्यायसंगत सिद्धांत पर किया जाना है। एक उपयुक्त प्रकरण में, शक्ति का प्रयोग स्वतः किया जा सकता है।

(ठ) अनुच्छेद 227 के अधीन उच्च न्यायालय की व्यापक और निरंकुश शक्ति की उचित

सराहना करने पर, यह स्पष्ट होता है कि इस अनुच्छेद का मुख्य उद्देश्य उच्च न्यायालय

अस्वीकरण: अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।



द्वारा अपने क्षेत्र के भीतर न्याय प्रशासन पर सख्त प्रशासनिक और न्यायिक नियंत्रण रखना है।

(ड) प्रशासनिक और न्यायिक दोनों प्रकार के अधीक्षण का उद्देश्य न्याय की संपूर्ण मशीनरी की दक्षता, सुचारु और व्यवस्थित कार्यकरण को इस प्रकार बनाए रखना है कि इससे यह किसी प्रकार की बदनामी न हो। इस अनुच्छेद के तहत हस्तक्षेप की शक्ति को न्यूनतम रखा जाना चाहिए ताकि यह सुनिश्चित किया जा सके कि न्याय का पहिया रुक न जाए और न्याय का स्रोत शुद्ध और अदूषित बना रहे ताकि उच्च न्यायालय के अधीनस्थ न्यायाधिकरणों और न्यायालयों के कामकाज में जनता का विश्वास बनाए रखा जा सके।

(ढ) न्यायिक हस्तक्षेप की इस आरक्षित और असाधारण शक्ति का प्रयोग केवल व्यक्तिगत प्रकरण में राहत प्रदान करने के लिए नहीं किया जाना है बल्कि इसे व्यापक जनहित में न्याय प्रशासन में जनता के विश्वास को बढ़ावा देने के लिए निर्देशित किया जाना चाहिए जबकि अनुच्छेद 226 व्यक्तिगत शिकायत के संरक्षण के लिए है। इसलिए, अनुच्छेद 227 के तहत शक्ति निरंकुश हो सकती है, लेकिन इसका प्रयोग ऊपर बताए गए उच्च स्तर के न्यायिक अनुशासन के अधीन है।

(ण) इस शक्ति का एक अनुचित और लगातार प्रयोग प्रतिकूल होगा और इसकी ताकत और जीवन शक्ति की इस असाधारण शक्ति को नष्ट कर देगा।”

16. प्रत्यर्थी के विद्वान अधिवक्ता ने अपनी प्रस्तुति के समर्थन में कोई निर्णय नहीं दिया है कि दिनांक 25.09.2025 और 23.12.2025 के आदेश तय किए गए प्रकरण की श्रेणी में आएंगे और इस न्यायालय के पुनरीक्षण क्षेत्राधिकार के लिए उत्तरदायी होंगे।

17. मुझे याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता की प्रस्तुति में बल मिलता है कि यद्यपि धारा 47 सीपीसी के तहत आवेदन को खारिज करने का आदेश इस न्यायालय के पुनरीक्षण क्षेत्राधिकार के लिए उत्तरदायी हो सकता है, अन्य दो आदेश तय किए गए प्रकरण की श्रेणी में नहीं आते हैं और इसलिए, वे इस न्यायालय के पुनरीक्षण क्षेत्राधिकार के लिए उत्तरदायी नहीं हैं। जब एक ही तरह के पक्षों के बीच एक ही कार्यवाही में पारित तीन आदेशों को इस न्यायालय के समक्ष चुनौती देने की आवश्यकता होती है, तो धारा 115 सीपीसी के तहत पुनरीक्षण दायर करके एक आदेश को चुनौती देते हुए, जबकि अन्य दो आदेशों की वैधता को चुनौती देने के लिए भारत के संविधान के अनुच्छेद 227 के तहत याचिका दायर करना, केवल कार्यवाही की बहुलता को जन्म देगा। भारत

अस्वीकरण: अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।



के संविधान के अनुच्छेद 227 के तहत इस न्यायालय को प्रदत्त अधीक्षण की शक्ति सीपीसी की धारा 115 के तहत इस न्यायालय की पुनरीक्षण शक्ति को कम नहीं करती है और इस शक्ति का प्रयोग तब किया जा सकता है जहां चुनौती के तहत आदेश क्षेत्राधिकार की पेटेंट त्रुटि से ग्रस्त है जिसे बिना किसी विस्तृत तथ्यात्मक जांच के स्थापित किया जा सकता है।

18. पूर्वगामी चर्चा को ध्यान में रखते हुए, मैं प्रारंभिक आपत्ति को अस्वीकार कर देता हूं कि याचिका सुनवाई योग्य नहीं है और मैं प्रकरण के गुण-दोष की जांच करने के लिए आगे बढ़ता हूं।

19. याचिकाकर्ता की शिकायत यह है कि भूमि अधिग्रहण अधिनियम के प्रावधानों के तहत, ब्याज का भुगतान धारा 4 के तहत अधिसूचना की तारीख से किया जा सकता है, न कि इससे पहले।

भारत संघ बनाम बुध सिंह: (1995) 6 एससीसी 233 में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने माना कि यह प्रश्न कि क्या भूमि के प्रत्यर्थी-मालिक उस तारीख से ब्याज के हकदार हैं, जिस दिन धारा 4(1) के तहत अधिसूचना प्रकाशित होने की तारीख से पहले शुरू में कब्जा लिया गया था, एक क्षेत्राधिकार का मुद्दा है और इस संबंध में निष्कर्ष न्यायालय की क्षेत्राधिकार की शक्ति को छूता है और खाइयों को छूता है, ब्याज देने के संबंध में अधिनियम के तहत कार्य करना। यह वर्तमान प्रकरण में शामिल सटीक मुद्दा है, जहां लारा ने अधिसूचना से पहले से ब्याज दिया है।

20. पक्षों के बीच विवाद भूमि अधिग्रहण अधिकारी नगर महापालिका-I, लखनऊ/अतिरिक्त जिला मजिस्ट्रेट, लखनऊ द्वारा पारित दिनांक 12.07.2012 के एक अधिनिर्णय से उत्पन्न होता है। अधिनिर्णय में कहा गया है कि भूमि अधिग्रहण अधिनियम की धारा 4/17 के तहत एक अधिसूचना 19.04.2010 को जारी की गई थी और भूमि अधिग्रहण अधिनियम की धारा 6/17 के तहत एक अधिसूचना 04.01.2011 को प्रकाशित की गई थी। अधिग्रहित भूमि का कब्जा लेने की तारीख के विपरीत, अधिनिर्णय में कहा गया है कि भूमि पहले से ही याचिकाकर्ता के कब्जे में है। अधिनिर्णय भूमि का कब्जा लेने की तारीख से ब्याज के भुगतान का निर्देश देता है।

21. प्रत्यर्थी ने 2015 का एक संदर्भ संख्या 119 दायर किया था, जिसे लारा द्वारा 10.04.2024 के एक निर्णय और आदेश के माध्यम से तय किया गया था। प्राधिकरण द्वारा निम्नलिखित मुद्दे तैयार किए गए थे: -

"1. क्या विशेष भूमि अधिग्रहण अधिकारी द्वारा घोषित मुआवजा अनुचित और अपर्याप्त है, यदि हां, तो भूमि अधिग्रहण अधिनियम की धारा 4 के तहत अधिसूचना के प्रकाशन की तारीख को संपत्ति का बाजार मूल्य क्या था?"

अस्वीकरण: अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।



2. अन्य राहत जिसका दावेदार हकदार है।”

22. जाहिर है, भूमि के कब्जे की तारीख के संबंध में कोई मुद्दा तैयार नहीं किया गया था। हालांकि, मुद्दा संख्या 1 पर निर्णय लेते समय, प्राधिकरण ने माना है कि यह स्पष्ट है कि भूमि का कब्जा वर्ष 1983-84 में लिया गया था, लेकिन चूंकि कब्जा लेने की तारीख का पता नहीं लगाया गया है, इसलिए प्राधिकरण ने 30.12.1984 को कब्जा लेने की तारीख मान ली। लारा ने माना कि दावेदार भूमि अधिग्रहण अधिनियम की धारा 4 के तहत अधिसूचना जारी होने की तारीख को भूमि के बाजार मूल्य पर मुआवजा प्राप्त करने का हकदार है, यानी 19.04.2010, जो 6,771/- रुपये प्रति वर्ग मीटर था। प्रत्यर्थी को अधिसूचना की तारीख यानी 09.04.2010 से अधिनिर्णय की तारीख तक 12% की दर से ब्याज प्राप्त करने का हकदार भी माना गया, यानी 12.07.2012 और 30% सोलेटियम। इसके अलावा प्रत्यर्थी को कब्जे की तारीख यानी 30.12.1984 से एक वर्ष की अवधि के लिए 9% प्रति वर्ष की दर से ब्याज प्राप्त करने का हकदार माना गया और उसके बाद 15% की दर से ब्याज प्राप्त करने का हकदार था।

23. संदर्भ में पारित दिनांक 10.04.2024 के पूर्वोक्त आदेश को विलंबित अपील दायर करके चुनौती दी गई है जिसे अभी तक स्वीकार नहीं किया गया है। अभी तक विलम्ब माफी नहीं किया गया है और अपील को अभी तक स्वीकार नहीं किया गया है।

24. प्रत्यर्थी ने संदर्भ में पारित अधिनिर्णय के निष्पादन के लिए निष्पादन वाद संख्या 42/2024 दायर किया। प्रत्यर्थी के डिक्री धारक ने भूमि अधिग्रहण अधिनियम की धारा 4 के तहत अधिसूचना की तारीख से नहीं बल्कि कब्जे की तारीख से ब्याज की गणना करते हुए एक गणना चार्ट दायर किया। याचिकाकर्ता ने इसके खिलाफ आपत्तियां दर्ज कीं और अधिनियम की धारा 4 के तहत अधिसूचना की तारीख से ब्याज की गणना करते हुए अपना गणना चार्ट दायर किया। एलएआरए ने दिनांक 25.09.2025 (याचिका के अनुलग्नक संख्या 2) के आक्षेपित आदेश के माध्यम से याचिकाकर्ता की आपत्ति को यह कहते हुए खारिज कर दिया कि याचिकाकर्ता ने अधिग्रहण के बाद भूमि पर कब्जा नहीं लिया था और इसे पहले ले लिया गया था। अधिनिर्णय में कहा गया है कि ब्याज भूमि का कब्जा लेने की तारीख से देय होगा। इसलिए, कब्जे की तारीख यानी 31.12.1984 से ब्याज की गणना करने वाले गणना चार्ट के खिलाफ याचिकाकर्ता की आपत्तियों को खारिज कर दिया गया और अधिनियम की धारा 4 के तहत अधिसूचना की तारीख से ब्याज की गणना करने



वाले याचिकाकर्ता के गणना चार्ट को भी खारिज कर दिया गया। प्राधिकरण ने कब्जे की तारीख से ब्याज की गणना के लिए प्रत्यर्थी-डिक्री धारक के गणना चार्ट को स्वीकार कर लिया।

25. इसके बाद याचिकाकर्ता ने सीपीसी की धारा 47 के तहत एक आवेदन दायर किया, जिसमें कहा गया था कि ब्याज केवल धारा 4 के तहत अधिसूचना की तारीख से दिया जा सकता है, न कि भूमि अधिग्रहण अधिनियम के तहत कार्यवाही शुरू करने से पहले किसी भी तारीख से। 30.12.1984 को कब्जा लेने की तारीख से ब्याज का अधिनिर्णय क्षेत्राधिकार के बिना है और इसलिए, अधिनिर्णय को उस सीमा तक निष्पादित नहीं किया जा सकता है जब तक कि यह भूमि अधिग्रहण अधिनियम की धारा 4 के तहत अधिसूचना से पहले की अवधि के लिए ब्याज प्रदान करता है। इस तर्क के समर्थन में याचिकाकर्ता ने एल.आर. जैन (डी) जरिए उत्तराधिकारी बनाम डीडीए और अन्य: (2004) 4 एससीसी 79 के प्रकरण में माननीय सर्वोच्च न्यायालय के फैसले पर भरोसा किया।

26. रिकॉर्ड से ऐसा प्रतीत होता है कि प्रत्यर्थी ने धारा 47 सीपीसी के तहत याचिकाकर्ता के आवेदन के खिलाफ कोई आपत्ति दर्ज नहीं की थी।

27. आवेदन को दिनांक 19.12.2025 के आक्षेपित आदेश के माध्यम से खारिज कर दिया गया है, जिसमें धारा 47 सीपीसी के तहत आवेदन में उठाई गई आपत्ति का उल्लेख किया गया है और यह उल्लेख किया गया है कि प्रत्यर्थी-डिक्री धारक के अधिवक्ता ने धारा 47 सीपीसी के तहत आवेदन का विरोध करते हुए कहा कि याचिकाकर्ता केवल निष्पादन की कार्यवाही में देरी कर रहा है। प्राधिकरण ने आक्षेपित आदेश में कहा है कि लेखा अधिकारी द्वारा प्रस्तुत रिपोर्ट (सी-17) के अनुसार 15,33,11,140/- रुपये की राशि पहले ही कुर्क की जा चुकी है और निर्णय देनदार ने एक समर्थन अनापत्ति की है। सीपीसी की धारा 47 के तहत आवेदन में उठाए गए आधार अधिनिर्णय की वैधता पर सवाल उठाने के बराबर हैं। इस फैसले को प्रथम अपील संख्या 84/2024 में चुनौती दी गई है, जिसमें कोई अंतरिम आदेश पारित नहीं किया गया है। प्राधिकरण ने अभिनिर्धारित किया कि आवेदन केवल निष्पादन की कार्यवाही में देरी के लिए दायर किया गया था और तदनुसार आवेदन को खारिज कर दिया गया।

28. दिनांक 19.12.2025 के आदेश का अवलोकन इंगित करता है कि यह कहीं भी याचिकाकर्ता की आपत्ति को खारिज करने का कोई कारण नहीं बताता है कि भूमि अधिग्रहण अधिनियम अधिनियम की धारा 4 के तहत अधिसूचना जारी करने से पहले की तारीख से ब्याज के भुगतान

अस्वीकरण: अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।



को निर्धारित नहीं करता है, जो कि धारा 47 सीपीसी के तहत आवेदन में उठाया गया एकमात्र आधार था। आक्षेपित आदेश में दर्ज प्रत्यर्थी-डिक्री धारक के विद्वान अधिवक्ता की प्रस्तुतियों में भी धारा 47 सीपीसी के तहत आवेदन में उठाए गए एकान्त आधार का कोई जवाब नहीं है और एकमात्र आपत्ति धारा 47 सीपीसी के तहत आवेदन है।

29. भूमि अर्जन अधिनियम की धारा 34 में ब्याज के भुगतान का प्रावधान है और यह निम्नानुसार प्रदान करता है: -

“34. ब्याज का भुगतान- जब इस तरह के मुआवजे की राशि का भुगतान नहीं किया जाता है या भूमि का कब्जा लेने से पहले जमा नहीं किया जाता है, तो कलेक्टर इस तरह से कब्जा लेने के समय से प्रति वर्ष नौ प्रतिशत की दर से ब्याज के साथ दी गई राशि का भुगतान करेगा, जब तक कि इसका भुगतान या जमा नहीं किया जाएगा:

बशर्ते कि यदि इस तरह के मुआवजे या उसके किसी हिस्से का भुगतान नहीं किया जाता है या कब्जा लेने की तारीख से एक वर्ष की अवधि के भीतर जमा नहीं किया जाता है, तो पंद्रह प्रतिशत प्रति वर्ष की दर से ब्याज मुआवजे की राशि या उसके हिस्से पर मुआवजे की राशि या उसके हिस्से पर देय होगा जो इस तरह की समाप्ति की तारीख से पहले भुगतान या जमा नहीं किया गया है।

30. ब्याज के भुगतान के लिए प्रासंगिक अन्य प्रावधान धारा 28 है, जो निम्नानुसार प्रदान करता है:-

“28. कलेक्टर को अतिरिक्त मुआवजे पर ब्याज का भुगतान करने का निर्देश दिया जाए - यदि न्यायालय की राय में, कलेक्टर को मुआवजे के रूप में दी जाने वाली राशि उस राशि से अधिक है जो कलेक्टर ने मुआवजे के रूप में दी थी, तो न्यायालय का अधिनिर्णय यह निदेश दे सकता है कि कलेक्टर इस तरह की अधिकता पर 53 [नौ प्रतिशत] प्रति वर्ष की दर से ब्याज का भुगतान करेगा, जिस दिन उसने भूमि का कब्जा लिया था, उस तारीख से इतनी अधिकता के भुगतान की तारीख तक न्यायालय में।

परन्तु न्यायालय का अधिनिर्णय यह भी निदेश दे सकेगा कि जहां इस तरह की अधिकता या उसके किसी भाग का भुगतान उस तारीख से एक वर्ष की अवधि की समाप्ति की तारीख के बाद न्यायालय में किया जाता है, जिस तारीख को कब्जा लिया जाता है,

वहां प्रति वर्ष पंद्रह प्रतिशत की दर से ब्याज, ऐसी अधिकता या उसके हिस्से की राशि पर

अस्वीकरण: अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु हैं और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।



एक वर्ष की उक्त अवधि की समाप्ति की तारीख से देय होगा जिसे इस तरह की समाप्ति की तारीख से पहले न्यायालय में भुगतान नहीं किया गया है।

31. **भारत संघ बनाम बुध सिंह:** (1995) 6 एससीसी 233 में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया कि: -

“5. कानून राज्य के दायित्व के संचालन के पूरे क्षेत्र को कवर करता है ताकि मालिक द्वारा ब्याज और पात्रता का भुगतान किया जा सके जब भूमि पर कब्जा कर लिया गया हो और उसके परिणामस्वरूप कब्जा कर लिया गया हो, तो भूमि मालिक को उसके आनंद से वंचित कर दिया गया था। इस प्रकार, यह देखा जा सकता है कि न्यायालय के पास कानून द्वारा निर्धारित दर और तरीके से अधिक ब्याज का भुगतान करने के साथ-साथ अधिनियम के तहत धारा 4(1) अधिसूचना के प्रकाशन से पहले की अवधि के लिए कोई शर्त लगाने की कोई शक्ति नहीं है। कार्यवाही शुरू करने का पैरामीटर अधिनियम की धारा 4(1) के तहत अधिसूचना का राज्य राजपत्र में या स्थानीय संशोधनों के अनुसार जिला राजपत्र में उपयुक्त प्रकरण में प्रकाशन है। लेकिन शर्त पूर्ववर्ती उपयुक्त राजपत्र में धारा 4 (1) के तहत अधिसूचना का प्रकाशन है। इससे राज्य को अधिनियम के उपबंधों के अनुसार भूमि का कब्जा लेने की वैधता मिल जाएगी। अन्यथा किसी भी कब्जे को अधिनियम के तहत लिया गया कब्जा नहीं माना जाएगा। वास्तव में, अधिनियम की धारा 48(2) के तहत एक स्थिति की परिकल्पना की गई है, अर्थात्, जब अधिनियम के तहत कार्यवाही शुरू की गई थी और मध्य में कार्यवाही को छोड़ दिया गया था, तो मालिक जिसे संपत्ति के आनंद से वंचित कर दिया गया है, कानून निम्नलिखित कार्यवाही के नोटिस के परिणामस्वरूप मालिक को हुए नुकसान के लिए मालिक को देय मुआवजे की राशि के निर्धारण का उपाय निर्धारित करता है अधिनियम। कानून अधिनियम के तहत कार्यवाही का बचाव करने के लिए मालिक द्वारा किए गए खर्चों की प्रतिपूर्ति करने के लिए राज्य पर दायित्व भी लगाता है। यह अधिनियम एक स्व-निहित संहिता है और न्याय, समानता और अच्छे विवेक के सामान्य कानून सिद्धांतों को कानून के प्रावधानों के विपरीत ब्याज देने में नहीं बढ़ाया जा सकता है।



32. आर.एल. जैन बनाम डीडीए: (2004) 4 एससीसी 79 में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने बुद्ध सिंह (पूर्वोक्त) के प्रकरण को शामिल करते हुए कई उदाहरणों पर चर्चा की और निष्कर्ष निकाला कि: -

“17.1. इसलिए, सामान्य नियम यह है कि यदि भूमि के अधिग्रहण के कारण कोई व्यक्ति अपनी संपत्ति के कब्जे से वंचित है, तो उसे तुरंत मुआवजे का भुगतान किया जाना चाहिए और यदि उसे तुरंत भुगतान नहीं किया जाता है तो वह बेदखली की तारीख से उसके भुगतान की तारीख तक उस पर ब्याज का हकदार होगा। लेकिन यहां भूमि का अधिग्रहण 9-9-1992 को प्रारंभिक अधिसूचना जारी होने के बाद ही किया गया है क्योंकि पहले अधिग्रहण की कार्यवाही को स्वयं भूस्वामी द्वारा स्थापित मुकदमे में शून्य और शून्य घोषित किया गया था और परिणामस्वरूप, वह पूर्वकाल अवधि के लिए मुआवजे या ब्याज का हकदार नहीं था।

18. ऐसे प्रकरण में जहां अधिनियम की धारा 4 (1) के तहत प्रारंभिक अधिसूचना जारी करने से पहले भूस्वामी को बेदखल कर दिया जाता है, सरकार केवल भूमि का कब्जा लेती है, लेकिन उसका शीर्षक भूस्वामी के पास निहित रहता है। यह पूरी तरह से खुला है कि भूस्वामी उचित कानूनी कार्यवाही करके अपनी भूमि का कब्जा वापस ले सकता है। इसलिए वह केवल उस अवधि के लिए उपयोग और व्यवसाय के लिए किराया या हर्जाना प्राप्त करने का हकदार है जब सरकार संपत्ति पर कब्जा रखती है। जहां प्रारंभिक अधिसूचना जारी करने से पहले कब्जा लिया जाता है, हमारी राय में, यह न्यायसंगत और न्यायसंगत होगा कि कलेक्टर संपत्ति के अधिग्रहण के लिए भूस्वामी को देय मुआवजा राशि का निर्धारण करते समय उस संपत्ति के उपयोग के लिए किराया या क्षति भी निर्धारित कर सकता है, जिसके लिए भूस्वामी हकदार है। अधिनियम की धारा 48 के प्रावधान इस तरह की कार्रवाई को समर्थन देते हैं। ऐसी राशि के विलंबित भुगतान के लिए प्रचलित बैंक दर पर उचित ब्याज दिया जा सकता है।

19. प्रकरण की जांच न्यायसंगत विचार से भी की जा सकती है। पहले की अधिग्रहण कार्यवाही में धारा 4 (1) के तहत अधिसूचना 13-11-1959 को प्रकाशित की गई थी और कलेक्टर ने 30-12-1961 को विवादित भूखंड के लिए 6301 रुपये का अधिनिर्णय दिया था। यह निर्णय बेदखली के 1 महीने के भीतर दिया गया था जो कथित तौर पर 10-11-



1961 को हुआ था। यह राशि आरएल जैन को दी गई थी और उनके पास रखी गई थी। प्रत्यर्थी के विद्वान अधिवक्ता ने 31-8-1961 को आर.एल. जैन के पक्ष में जारी बिक्री प्रमाण पत्र की एक प्रति न्यायालय के समक्ष रखी है, जिससे पता चलता है कि भूखंड उनके द्वारा केवल 3200 रुपये में खरीदा गया था और इस प्रकार उन्हें मुआवजे की लगभग दोगुनी राशि मिली थी। इसलिए, न्यायसंगत आधार पर भी वह 1992 में जारी अधिनियम की धारा 4(1) के तहत दूसरी अधिसूचना की तारीख तक बेदखली की तारीख तक किसी भी राशि का हकदार नहीं है।”

33. प्रत्यर्थी के विद्वान अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया है कि आर.एल. जैन बनाम डीडीए (पूर्वोक्त) में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने माना कि यदि भूमि के अधिग्रहण के कारण कोई व्यक्ति अपनी संपत्ति के कब्जे से वंचित है तो उसे तुरंत मुआवजे का भुगतान किया जाना चाहिए और यदि उसे तुरंत भुगतान नहीं किया जाता है तो वह बेदखली की तारीख से उसके भुगतान की तारीख तक उस पर ब्याज का हकदार होगा।

34. श्री. जायसवाल ने मदिशेट्टी बाला रामुल बनाम भूमि अधिग्रहण अधिकारी: (2007) 9 एससीसी 650 में की गई निम्नलिखित टिप्पणियों पर भी भरोसा किया है: -

“20. प्रकरण के अजीबोगरीब तथ्यों और परिस्थितियों में, हालांकि हमारे लिए उचित तरीके से प्रकरण को कलेक्टर को वापस भेजना होगा ताकि मुआवजे की राशि निर्धारित की जा सके जिसके लिए अपीलकर्ता 1979 से कब्जे से बाहर रहने के हकदार होंगे, हमारी राय है कि न्याय के हित को पूरा किया जाएगा यदि इस अपील का निपटारा इस निर्देश के साथ किया जाता है कि अतिरिक्त ब्याज @ 15% प्रति वर्ष 16-3-1979 से 22-12-1991 तक की अवधि के लिए दिनांक 2-1-1999 के अधिनिर्णय के संदर्भ में प्रदान की गई राशि प्रदान की जानी चाहिए, जो हमारी राय में, न्याय के उद्देश्यों को पूरा करेगी।”

35. प्रत्यर्थी के विद्वान अधिवक्ता ने ताहेरा खोतून बनाम भूमि अधिग्रहण अधिकारी: (2014) 13 एससीसी 613 के प्रकरण में निर्णय पर भी भरोसा किया, जिसमें माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने आर.एल. जैन बनाम डीडीए (पूर्वोक्त) और मदिशेट्टी बाला रामुल (पूर्वोक्त) के प्रकरण में निर्णयों का उल्लेख किया और माना कि: -



13. प्रकरण के अजीबोगरीब तथ्यों और परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए, हमारी राय है कि इस न्यायालय द्वारा मदिशेट्टी बाला रामुल में जो अभ्यास किया गया है, उसे अपनाने की आवश्यकता है।

14. वर्तमान प्रकरण में, यह विवाद में नहीं है और न ही किसी भी पक्ष द्वारा इस बात पर विवाद किया जा सकता है कि विवादित संपत्ति वारंगल नगर समिति के कब्जे में थी। वास्तव में उक्त नगर समिति ने उपरोक्त भूमि को एक पार्क के रूप में विकसित किया था। चूंकि भूमि के मालिकों के बीच नगरपालिका समिति के साथ विवाद था, इसलिए नगरपालिका समिति ने संपत्ति का अधिग्रहण करने और इसके उपयोग और विकास के लिए इसे नगरपालिका समिति को सौंपने के लिए राज्य सरकार से सहायता मांगी थी।

15. यह भी विवाद में नहीं है कि नगरपालिका समिति 1-1-1938 से 10-1-1996 को राज्य सरकार द्वारा अधिसूचना जारी होने तक उपरोक्त संपत्ति के अधिकार में थी। मदिशेट्टी बाला रामुल में इस न्यायालय द्वारा की गई टिप्पणियों को ध्यान में रखते हुए, हम राज्य सरकार को निर्देश देते हैं कि वह भूमि मालिकों को बेदखल किए जाने की तारीख से दिए गए मुआवजे पर 15% की दर से किराया/हर्जाना का भुगतान करे, अर्थात्, 1-1-1938 से प्रारंभिक अधिसूचना जारी होने की तारीख यानी 10-1-1996 तक। राज्य सरकार द्वारा गणना जितनी जल्दी हो सके की जाएगी और इस आदेश की प्रति प्राप्त होने की तारीख से तीन महीने के भीतर अपीलकर्ताओं को किसी भी दर पर, जितनी जल्दी हो सके उपरोक्त राशि का वितरण किया जाएगा।”

36. प्रत्यर्थी के विद्वान अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया है कि विचारगत अधिनिर्णय कब्जे पर कब्जा करने की तारीख से ब्याज प्रदान करता है ताकि अधिग्रहण के बिना अवैध रूप से अपनी संपत्ति के कब्जे से वंचित होने से प्रत्यर्थी को हुए अनुचित नुकसान की भरपाई की जा सके।

37. वर्तमान प्रकरण में, 09.09.1992 को अधिनियम की धारा 4 के तहत एक अधिसूचना जारी होने के बाद ही भूमि का अधिग्रहण किया गया है, क्योंकि पहले के अधिग्रहण की कार्यवाही को प्रत्यर्थी द्वारा स्वयं स्थापित मुकदमे में शून्य और शून्य घोषित किया गया था। न तो प्रत्यर्थी ने भूमि के कब्जे से वंचित होने के लिए मुआवजे के भुगतान के लिए राहत का दावा किया था, न ही उसे उक्त राहत दी गई थी।



38. जैसा कि पहले ही ऊपर चर्चा की जा चुकी है, भूमि अधिग्रहण अधिनियम, 1894 में अधिनियम की धारा 4 के तहत अधिसूचना जारी करने से पहले की अवधि के लिए ब्याज के भुगतान का कोई प्रावधान नहीं है। अधिनियम में धारा 23 (1-ए) में अतिरिक्त मुआवजे के भुगतान का प्रावधान है, जो इस प्रकार है: -

“(1क) उपर्युक्त उपबंधित भूमि के बाजार मूल्य के अतिरिक्त, न्यायालय प्रत्येक प्रकरण में ऐसी भूमि के संबंध में धारा 4, उपधारा (1) के अधीन अधिसूचना के प्रकाशन की तारीख से लेकर कलेक्टर के अधिनिर्णय की तारीख तक या कब्जा लेने की तारीख तक ऐसी बाजार मूल्य पर प्रति वर्ष बारह प्रतिशत की दर से परिकलित राशि प्रदान करेगा भूमि का, जो भी पहले हो।

स्पष्टीकरण-इस उपधारा में निर्दिष्ट अवधि की गणना करने में, किसी भी अवधि या अवधि के दौरान किसी भी न्यायालय के आदेश द्वारा किसी भी स्थगन या निषेधाज्ञा के कारण भूमि के अधिग्रहण की कार्यवाही को रोक दिया गया था, को बाहर रखा जाएगा।”

39. अधिनियम की धारा 23 (1-ए) भी धारा 4 (1) के तहत अधिसूचना की तारीख से शुरू होने वाली अवधि के लिए भूमि के बाजार मूल्य पर बारह प्रतिशत प्रति वर्ष की दर से परिकलित अतिरिक्त राशि के भुगतान के लिए प्रदान करती है (1) अधिनिर्णय की तारीख या भूमि का कब्जा लेने की तारीख, जो भी पहले हो। यह प्रावधान धारा 4 (1) के तहत अधिसूचना जारी करने की तारीख के बाद ही अतिरिक्त राशि के भुगतान को निर्धारित करता है, लेकिन राशि की गणना अधिनिर्णय की तारीख या कब्जा लेने की तारीख, जो भी पहले हो, तक की जाएगी। यह अधिनियम की धारा 4 के तहत अधिसूचना जारी करने से पहले किसी भी अवधि के लिए किसी भी अतिरिक्त राशि के भुगतान को निर्धारित नहीं करता है।

40. भूमि अधिग्रहण अधिनियम की धारा 4 के तहत अधिसूचना जारी करने से पहले की अवधि के लिए ब्याज का भुगतान न्यायसंगत विचारों पर आधारित है क्योंकि एक व्यक्ति जो अपनी भूमि के उपयोग और आनंद से वंचित किया गया है, उसे उसी के संबंध में मुआवजा प्रदान किया जाना चाहिए। तथापि, भूमि अधिग्रहण अधिनियम में यह प्रावधान है कि भूमि अर्जन अधिनियम की धारा 4 के अंतर्गत अधिसूचना की तारीख को भूमि के मूल्य को ध्यान में रखते हुए मुआवजे की राशि का निर्धारण किया जाएगा और ब्याज भी उसी तारीख से देय होगा। इक्विटी की मांग है कि भूमि मालिक को उस तारीख से प्रतिपूरक लाभ दिया जाना चाहिए जब वह अपनी भूमि के

अस्वीकरण: अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।



कब्जे के आनंद से वंचित है। यदि हम वैधानिक प्रावधानों को न्यायसंगत विचारों के साथ समेटते हैं, तो प्रत्यर्थी को अधिनियम की धारा 4(1) के तहत अधिसूचना की तारीख पर प्रचलित दरों पर मुआवजा प्राप्त करने का वैधानिक अधिकार है, यानी 19.04.2010 से और वह 19.04.2010 से इस राशि पर ब्याज प्राप्त करने का हकदार है। न्यायसंगत विचारों पर, प्रत्यर्थी अपनी भूमि के कब्जे और आनंद से वंचित होने की तारीख, यानी 31.12.1984 को मुआवजा प्राप्त करने का हकदार था और उस स्थिति में, मुआवजा 31.12.1984 को प्रचलित दरों पर देय होगा और उसे 31.12.1984 से इस राशि पर ब्याज मिलेगा।

41. हालांकि, वर्तमान प्रकरण में, हालांकि कहा जाता है कि प्रत्यर्थी को वर्ष 1984 में अपनी भूमि के कब्जे से वंचित कर दिया गया था, मुआवजे की दर का आकलन धारा 4 यानी 19.04.2010 के तहत अधिसूचना की तारीख को प्रचलित भूमि के मूल्य पर किया गया है, जो स्पष्ट रूप से 31.12.1984 को प्रचलित दरों से कई गुना अधिक है। प्रत्यर्थी यह दावा कर रहा है कि यद्यपि उसे वर्ष 1984 में भूमि के कब्जे से वंचित कर दिया गया था, उसे 19.04.2010 को प्रचलित दरों पर मुआवजे का भुगतान किया जाना चाहिए, यानी 26 साल बाद, और उसे 31.12.1984 से 19.04.2010 को प्रचलित दरों पर गणना की गई मुआवजे की राशि पर ब्याज दिया जाना चाहिए। यह दावा न्यायसंगत नहीं है।

42. यदि प्रत्यर्थी ने वर्ष 1984 में भूमि का कब्जा लेने के तुरंत बाद समान विचारों पर भूमि अधिग्रहण मुआवजे का दावा किया होता और उसे भुगतान किया जाता था, तो उसे वर्ष 1984 में प्रचलित दरों पर ही मिल जाता और उस स्थिति में, वह कब्जा लेने की तारीख से भुगतान करने की तारीख तक वर्ष 1984 में देय राशि पर ब्याज प्राप्त करने का हकदार होगा। हालांकि, न तो प्रत्यर्थी ने जमीन का कब्जा लेने के तुरंत बाद मुआवजे का दावा किया और न ही उसे इसका भुगतान किया गया। मुआवजे की राशि का आकलन अब अधिनियम की धारा 4 (1) के तहत अधिसूचना की तारीख के अनुसार किया गया है, यानी 19.04.2010, जो कि 6,771 रुपये प्रति वर्ग मीटर था और उसे अधिसूचना की तारीख यानी 09.04.2010 से अधिनिर्णय की तारीख तक 12% की दर से ब्याज दिया गया है, यानी 12.07.2012 और 30% सोलेटियम। इसके अलावा प्रत्यर्थी को कब्जे की तारीख यानी 30.12.1984 से एक वर्ष की अवधि के लिए 9% प्रति वर्ष की दर से ब्याज प्राप्त करने का हकदार माना गया और उसके बाद 15% की दर से ब्याज प्राप्त करने का हकदार था। भूमि का कब्जा लेने और धारा 4 के तहत अधिसूचना जारी करने के बीच

26 साल की देरी के परिणामस्वरूप मुआवजे का आकलन कब्जा लेने की तारीख के 26 साल बाद

अस्वीकरण: अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।



प्रचलित दरों पर किया जा रहा है, जो किसी भी प्रकरण में, उस राशि से बहुत अधिक है जो वर्ष 1984 में मुआवजे का निर्धारण किया गया था, जब कब्जा लिया जाता था और उस पर ब्याज जोड़ा जाता था। इसलिए, प्रत्यर्थी को भूमि का कब्जा लेने की तारीख के 26 साल बाद प्रचलित दरों पर मुआवजे के आकलन द्वारा न्यायसंगत विचारों पर भी पर्याप्त मुआवजा दिया जाता है।

43. प्रत्यर्थी के विद्वान अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया है कि भूमि के अधिग्रहण के लिए राज्य का इरादा धारा 4 के तहत अधिसूचना के प्रकाशन की तारीख यानी 19.04.2010 को व्यक्त किया गया था और इसलिए मुआवजे का आकलन 14.04.2010 को किया जाना है। यदि यह सबमिशन स्वीकार कर लिया जाता है, तो ब्याज भी 19.04.2010 से देय होगा क्योंकि इससे पहले अधिग्रहण के लिए कोई इरादा व्यक्त नहीं किया गया था।

44. पूर्वगामी चर्चाओं को ध्यान में रखते हुए, मेरा विचार है कि भूमि अधिग्रहण अधिनियम की धारा 4(1) के तहत अधिसूचना जारी करने की तारीख 19.04.2010 से पहले किसी भी अवधि के लिए ब्याज देने का कोई क्षेत्राधिकार नहीं था। यह स्थापित कानून है कि क्षेत्राधिकार की कमी की दलील किसी भी स्तर पर, यहां तक कि निष्पादन कार्यवाही के दौरान भी धारा 47 सीपीसी के तहत एक आवेदन दायर करके उठाई जा सकती है। लारा ने याचिकाकर्ता द्वारा उठाए गए क्षेत्राधिकार की कमी की दलील से निपटने के बिना दिनांक 25.09.2025 और 19.12.2025 को आक्षेपित आदेश पारित किए हैं, जो आदेशों को कानून में अस्थिर बनाता है।

45. तदनुसार, आक्षेपित आदेश दिनांक 25.09.2025 तथा 19.12.2025 अपास्त किए जाते हैं। यह अभिधारित किया जाता है कि विपक्षी धारा 4 के अधीन अधिसूचना की तिथि अर्थात् 19.04.2010 से प्रतिकर की राशि पर ब्याज प्राप्त करने का अधिकारी है।

46. अब, मैं याचिकाकर्ता की आपत्ति को खारिज करते हुए दिनांक 23.12.2025 के आदेश की वैधता से निपटने के लिए आगे बढ़ता हूं कि याचिकाकर्ता के खिलाफ पारित निर्णय के निष्पादन के लिए निष्पादन कार्यवाही में याचिकाकर्ता के किसी भी अधिकारी को गिरफ्तार नहीं किया जा सकता है। याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने **धनुष वीर सिंह बनाम इला शर्मा: 2024 एससीसी ऑनलाइन इला 3693** के प्रकरण में एक फैसले पर भरोसा किया है, जिसमें विचार के लिए विवादास्पद प्रश्न यह था कि क्या एक लिमिटेड कंपनी के निदेशकों/अधिकृत प्रतिनिधियों को गिरफ्तार किया जा सकता है और कंपनी के खिलाफ धन डिब्री के निष्पादन के लिए सिविल जेल में हिरासत में रखा जा सकता है या यह कहने के लिए कि क्या कंपनी के निदेशक/अधिकृत



प्रतिनिधि उक्त डिक्री के निष्पादन के लिए निर्णय देनदार कंपनी के लिए एक प्रतिनिधि क्षमता। इस न्यायालय की एक समन्वय पीठ ने माना है कि सीपीसी में ऐसा कोई प्रावधान नहीं है जो अपने कर्मचारी, निदेशक या महाप्रबंधक की गिरफ्तारी और हिरासत में लेकर निर्णय देनदार कंपनी के खिलाफ धन डिक्री के निष्पादन का प्रावधान करता हो। याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया है कि याचिकाकर्ता लखनऊ विकास प्राधिकरण एक कॉर्पोरेट निकाय है और इसके अधिकारियों को प्राधिकरण के खिलाफ जारी किए गए फैसले या डिक्री के निष्पादन के लिए गिरफ्तार नहीं किया जा सकता है।

47. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता की इस दलील का विरोध करते हुए, प्रत्यर्थी के विद्वान अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया है कि याचिकाकर्ता लखनऊ विकास प्राधिकरण एक न्यायिक व्यक्ति है और यह उन प्राकृतिक व्यक्तियों के माध्यम से कार्य करता है जो इसके प्रकरण के प्रभारी हैं। इसलिए, याचिकाकर्ता लखनऊ विकास प्राधिकरण द्वारा एक निर्णय देनदार के रूप में किए गए किसी भी चूक के लिए, जहां कानून निर्णय देनदार को कैद करने की अनुमति देता है, निर्णय देनदार एक न्यायिक व्यक्ति होने के नाते, प्राकृतिक व्यक्ति जो याचिकाकर्ता के प्रकरण के लिए प्रभारी और जिम्मेदार हैं, उन्हें कैद से गुजरना होगा। हालांकि, प्रत्यर्थी के विद्वान अधिवक्ता ने इस सबमिशन के समर्थन में कोई केस लॉ प्रस्तुत नहीं किया है।

48. धनुष वीर सिंह बनाम इला शर्मा (पूर्वोक्त) में प्रतिपादित विधि को दृष्टिगत रखते हुए, मेरा मत है कि निष्पादन न्यायालय के पास याचिकाकर्ता-निर्णय ऋणी के विरुद्ध पारित आदेश के निष्पादन हेतु याचिकाकर्ता-निर्णय ऋणी के अधिकारियों एवं कर्मचारियों की गिरफ्तारी तथा निरुद्ध किए जाने का आदेश देने का कोई अधिकार नहीं है। अतः आक्षेपित आदेश दिनांक 23.12.2025 भी विधि की दृष्टि में अवैध है और उसे भी अपास्त किया जाता है।

49. लारा को यह स्वतंत्रता होगी कि वह प्रश्नगत अधिनिर्णय का निष्पादन सिविल प्रक्रिया संहिता में निहित प्रावधानों के अनुसार, स्वयं लखनऊ विकास प्राधिकरण के विरुद्ध उपयुक्त कार्यवाही करके करे, न कि लखनऊ विकास प्राधिकरण में किसी पद अथवा कार्यालय पर कार्यरत व्यक्तियों के विरुद्ध कोई प्रपीड़क कार्यवाही अपनाए।

50. तदनुसार, याचिका उपर्युक्त शर्तों के साथ स्वीकृत किया जाता है।

(न्यायमूर्ति सुभाष विद्यार्थी)

19 फरवरी, 2026

अस्वीकरण: अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।



राम.

Translated Version. Not for Legal Use.

अस्वीकरण: अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है।
सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।